जीवन का उत्तरार्ध

लोकसेवा में लगाएँ

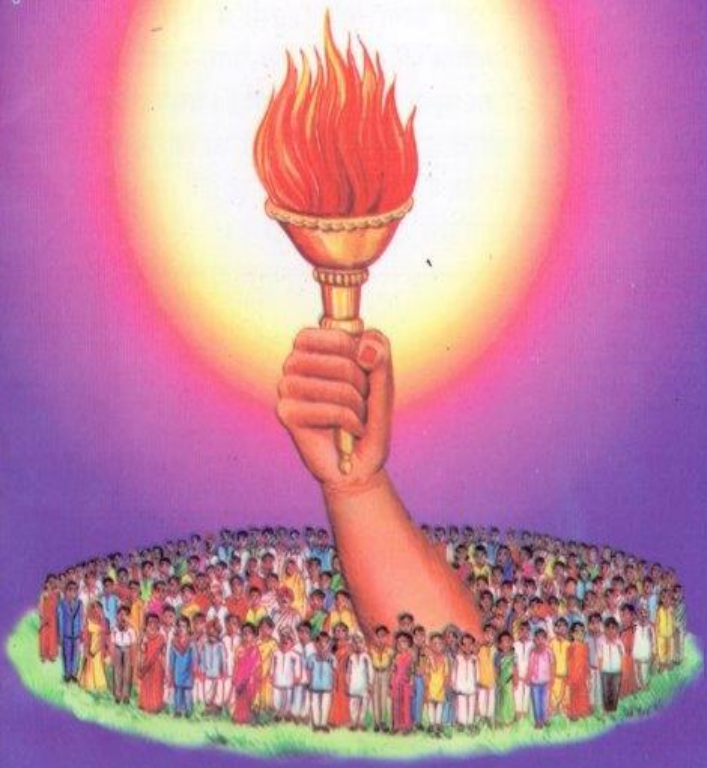

जीवन का उत्तरार्द्ध लोकसेवा में लगाएँ

लेखक :
श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१३ मूल्य : ७.०० रुपये

जाग्रत आत्माओं से अनुरोध

युग परिवर्तन की महती आवश्यकता की पूर्ति के लिए भावनाशील व्यक्तियों के प्रबल पुरुषार्थ के साथ उठ खड़े होने का ठीक यही समय है। बढ़ती हुई दुष्प्रवृत्तियों का प्रवाह इतना प्रचंड है कि यथास्थिति बनाए रहना किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं। जनमानस में विकृत्तियाँ इस कदर बढ़ती जा रही हैं कि उनके विद्रूप विस्फोट कभी भी विपत्ति खड़ी करके रख देंगे। अपराधों की दुष्प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष और परोक्ष स्तर पर इतनी बढ़ती जा रही हैं कि अब किसी घोषित सदाचारी के भी छद्म-दुराचारी होने की आशंका रहती है। लगता है कि चरित्र निष्ठा कोई तथ्य न रहकर वाक्विलास की, परस्पर उपदेश करने में काम आने वाली चर्या बनकर रह गई है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति अविश्वास चरम सीमा तक बढ़ता जा रहा है। पति और पत्नी के बीच की गई पवित्र प्रतिज्ञाएँ एक मखौल जैसी बन गई हैं। कामुक दृष्टि की प्रधानता के कारण पवित्र विवाह संस्था का लगभग दम ही घुट चला है। पिता-पुत्र के संबंध नाम मात्र के रह गए हैं। असंयमी मनुष्य अहर्निश अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता रहता है। नशेबाजी से अब कोई बिरला ही बचा है। मनोविकारों की तो हद ही हो गई है। अनास्थावान बढ़ते जा रहे हैं। चिंता, निराशा, आशंका, असुरक्षा एवं अविश्वास से बचा हुआ स्वच्छ मन अब किसी बिरले का ही दृष्टिगोचर होगा।

न्याय की चर्चा तो बड़ी सुंदर है, पर इसे प्राप्त कर सकना ईश्वर को प्राप्त कर सकने से भी अधिक दुर्लभ हो गया है। सर्वसाधारण को न्याय मिल सके, ऐसी आज की

स्थिति नहीं है और न सरकारी मशीनरी ही उस प्रयोजन को पूरा कर सकने में समर्थ है। धर्म-अध्यात्म, समाज एवं राजनीति के क्षेत्रों में सुधार एवं उत्थान के नारे जोर शोर से लगाए जाते हैं, पर उन क्षेत्रों में जो हो रहा है, जो लोग कर रहे हैं, उसमें कथनी और करनी के बीच जमीन-आसमान जैसा अंतर देखा जा सकता है। अंतरराष्ट्रीय स्थिति तो और भी विस्फोटक होती जा रही है।

क्या हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें?

हम सभी आज ऐसे ही विपत्ति भरे क्षणों में जीवनयापन कर रहे हैं। क्या यथास्थिति बनी रहने दी जाए ? क्या हम सब ऐसे ही हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें ? अपने को असहाय-असमर्थ अनुभव करते रहें और स्थिति बदलने के लिए किसी दूसरे पर आशा लगाए बैठे रहें! मानवी पुरुषार्थ कहता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। बदलाव के लिए बड़े लोग न आए तो भी निराश नहीं होना चाहिए। हम छोटे लोगों को ही मिलजुलकर कुछ करना चाहिए। हम भावनाशील और कर्मनिष्ठ व्यक्ति क्या कुछ नहीं कर सकते!

आज की आवश्यकता

आज रीछ-वानरों की तरह प्राणपण से असुरता से जूझने वाले भावनाशील और कर्मनिष्ठ व्यक्तित्वों की आवश्यकता है, जो हलके-फुलके ढंग से यश-लिप्सा के लिए लोकसेवा का आडंबर करने नहीं वरन् उसके महान प्रयोजन के लिए अपने को गलाने-मिटाने के व्रत-संकल्प लेकर आगे आएँ। ऐसे व्यक्तित्व यदि मिल सके तो व्यक्ति, परिवार और समाज के हर क्षेत्र को जकड़े हुए प्रस्तुत अंधकार का सामना किया जा सकता है। कोई कारण नहीं कि युग परिवर्तन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अपने को खपा देने वाले परिष्कृत व्यक्तित्व समय पर छाई हुई विभीषिकाओं को उलटकर न रख सकें।

इस संदर्भ में भारत की एक अत्यंत महत्वपूर्ण परंपरा भी है-वानप्रस्थ। उस गौरव-गरिमा के दिनों में प्राय: प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति अपने जीवन का उत्तरार्ध इसी प्रयोजन के लिए समर्पित करता था कि समाज की विकृत्तियों पर उगते ही कुठाराघात किया जाए और सर्वतोमुखी उत्कर्ष की सत्प्रवृत्तियों को अभिसिंचित करने में अनवरत रूप से संलग्न रहा जाए। वानप्रस्थ जीवन का उद्देश्य यही था कि समाज को भी गिराने-मिटाने वाली विकृतियों को खुली छूट न दी जाए, वरन् उन्हें निरस्त करने के लिए एक दल निरंतर क्रियाशील बना रहे।

पू० गुरुदेव द्वारा वानप्रस्थ परंपरा के बारे में अखण्ड ज्योति पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित लेखों से संकलित विचार प्रकाशित किए जा रहे हैं। पूर्ण मनोयोग से चिंतन-मनन के साथ स्वयं पढ़ने के बाद जाग्रत आत्माओं की विचारगोष्ठियाँ करके पढ़कर सुनाने का प्रयास करें। अधिकाधिक पुस्तकें दानदाताओं के सहयोग से मँगाकर वरिष्ठ भाई-बहनों में वितरित करें। सभी पाठकों से अनुरोध करें कि वह स्वयं पढ़ने के बाद १०-१० भाई-बहनों को पढ़ाने का प्रयास करें। लिए गए संकल्पों से अवगत कराते रहें।

हमें वानप्रस्थ आश्रम को पुनर्जीवित करने में पूरी शक्ति लगानी चाहिए, ताकि अवांछनीय स्थिति को बदलने में समर्थ, कर्मठ एवं सुयोग्य व्यक्तियों की कमी न रहे। यह किया जा सका तो युग बदला जा सकेगा और प्रस्तुत अंधकार को चीरकर रख देने वाला प्रकाश निश्चित रूप से उत्पन्न किया जा सकेगा। विस्तृत जानकारी एवं परामर्श पत्राचार द्वारा या व्यक्तिगत रूप से मिल कर प्राप्त कर सकते हैं।

व्यवस्थापक
युग निर्माण योजना, मथुरा

भारतीय संस्कृति की आश्रम व्यवस्था

इस संसार में 'लो और दो' की नीति पर सारी व्यवस्था चल रही है। 'लो' के लिए तैयार 'दो' के लिए इंकार की परंपरा यदि चल पड़े तो सारा क्रम ही उलट जाएगा, तब हमें असामाजिक आदिम युग की ओर वापिस लौटना पड़ेगा।

आधा भाग मनुष्य की बुद्धि और श्रमशीलता का और आधा भाग सामाजिक अनुदान का माना गया है। तदनुसार तत्वदर्शियों ने यह व्यवस्था बनाई है कि मनुष्य को अपनी जीवन संपदा का आधा भाग अपनी शरीर यात्रा के लिए रखना चाहिए और आधा सामाजिक उत्कर्ष के लिए लगा देना चाहिए।

आश्रम धर्म की व्यवस्था भारतीय संस्कृति में इसी दृष्टि से की गई है। आयुष्य का एक चौथाई भाग खेल-कूद, ज्ञान और शरीर की वृद्धि के लिए, यह ब्रह्मचर्य हुआ, एक चौथाई विवाह, संतान, परिवार, यश, वैभव, मनोरंजन आदि के लिए, यह गृहस्थ हुआ। इतना भाग निजी सुख-सुविधा के लिए है। शेष आधा वानप्रस्थ और संन्यास के रूप में लोक-मंगल के लिए, आत्मिक उत्कृष्टता अभिवर्धन के लिए नियुक्त होना चाहिए। जीवन-संपदा का यही श्रेष्ठतम विभाजन है। भारतीय धर्म और संस्कृति की यह एक अति महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है, जिस पर उसकी महान सामाजिक व्यवस्था की आदर्श परिपाटी निर्भर रही है।

सामाजिक उत्कृष्टताओं के अभिवर्धन, सत्परंपराओं के संचालन और विकृतियों के निवारण के लिए निरंतर प्रयत्न किया जाना आवश्यक है। यह प्रयोजन सुयोग्य, अनुभवी और निस्पृह लोगों के द्वारा ही पूरा हो सकता है। अनेक सत्प्रवृत्तियों के गतिशील रहने से ही समाज की श्रेष्ठता और महानता सुदृढ़ रह सकती है। इस कार्य के लिए ढलती आयु के व्यक्तियों को अपना जीवन समर्पित करना चाहिए। उसे उदारता, दान, परमार्थ, धर्म, पुण्य कुछ

भी कहा जा सकता है। ऋण चुकाना या कर्त्तव्य-पालन भी इसे कह सकते हैं। कहा कुछ भी जाए, यह है नितांत आवश्यक। यह परंपरा चलते रहने से ही सुयोग्य समाज सेवियों की आवश्यकता पूरी हो सकती है और सामाजिक महानता अक्षुण्ण रह सकती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी को शास्त्र मर्यादा या ईश्वरीय आज्ञा के रूप में ढलती आयु में वानप्रस्थ ग्रहण करके अपना श्रम, समय और मनोयोग लोक-कल्याण के लिए लगाने का निर्देश किया गया है।

जीवन के उत्तरार्ध का श्रेष्ठतम सदुपयोग शास्त्रकारों ने यही बताया है कि उसे ज्ञान-साधना, तपश्चर्या एवं लोक-मंगल की परिव्राजक प्रक्रिया में लगाते हुए आत्मकल्याण एवं विश्व-कल्याण का प्रयोजन पूरा कर लें। परिवार के बचे हुए उत्तरदायित्व बड़े और स्वावलंबी लड़के को सौंपे जा सकें, इसके लिए उन्हें पहले से ही प्रशिक्षित करना चाहिए।

शास्त्रकारों और आप्त पुरुषों ने पग-पग पर इस परंपरा के पालन का निर्देश किया है। धर्म ग्रंथों में हर जगह इसी प्रकार के निर्देशों की भरमार है।

महर्षिपितृदेवानां गत्वाऽऽनृण्यं यथाविधि।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थ्यमास्थितः॥

(मनु. ४ / २५७)

ढलती आयु में पुत्र को गृहस्थ का उत्तरदायित्व सौंप दें। वानप्रस्थ ग्रहण करें और देव, पितर तथा ऋषियों का ऋण चुकाएँ।

ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भूत्वा बनी भवेत्।
बनी भूत्या प्रव्रजेत्।

(शतपथ ब्राह्मण)

ब्रह्मचर्य आश्रम पूरा होने पर गृहस्थ में प्रवेश करें। गृहस्थ की अवधि पूरी होने पर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करें और धर्म प्रचार के लिए परिभ्रमण करें।

स्कन्धयोरूत्तरे स्वस्थ योग्याधिकारिणः शनैः।
मनसः वामना तृष्णो द्वेष दुर्भावने तथा॥
दूरी कृत्य भवल्लनः साधनोपा सनादिषु।
निरतो लोक सेवायां स्वेन्द्रियाणि नियन्त्रयेत्॥

घर का उत्तरदायित्व प्रसन्नचित्त से अपने योग्य उत्तराधिकारी के कंधों पर डाल दें। वह वानप्रस्थ में प्रवेश करें।

मन से वासना, तृष्णा, द्वेष, दुर्भाव दूर कर अपनी साधना, उपासना आदि में संलग्न हों। लोकसेवा में तत्पर होता हुआ अपनी इंद्रियों का नियंत्रण करे।

सदाध्यात्मिक सम्पत्तिः सञ्चयेल्लोक सेवया।
समयस्य विशिष्टांशं शुभकार्ये नियोजयेत॥
विश्वं मत्वाऽऽत्मरूपं यत् शिक्षक वद् गृहाद्बहिः।
जीवनस्यास्य साफल्यं वैराग्योपरितिष्ठिति॥

वानप्रस्थ सदैव आध्यात्मिक संपत्ति को लोकसेवा से संचित करें। विश्व को आत्मस्वरूप मानकर शिक्षक की भाँति घर से बाहर समय का विशिष्टांश शुभ कार्य में लगाएँ, क्योंकि इस जीवन की सफलता निस्वार्थ भाव पर निर्भर है। निवृत्तिप्रधान वानप्रस्थ को स्वार्थ-मुक्ति तथा दूसरी आध्यात्मिक विभूतियों का केंद्र माना गया है।

वानप्रस्थ ग्रहण करते समय जो प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं उस संकल्प में उस आश्रम के उद्‌देश्य, प्रयोजन एवं कार्यक्रम का स्पष्ट निर्देश है-

न्यायं बदामि उभयलोका हतं गदामि।
लोकौ अतीत्य परमार्थ युञ्ज स्तवीमि॥
शंसामि यन्ननु निर्देज्ञन आर्या मेव।
गृहपवीत हृष्ट हृदयाः तद अथार्य वर्याः॥

मैं न्याय का अनुसरण करते हुए भाषण करूँगा। लोक और परलोक सुधारने वाले प्रवचन करूँगा। आत्मकल्याण और समाजकल्याण में निरत रहूँगा। समष्टि के श्रेय साधन में लगूँगा।

यज्ञादि सत्कर्मों का उत्थान करूँगा। उत्साहपूर्वक आर्य धर्म का विस्तार करूँगा।

आनये तमारभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु
प्रजानन्। तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो
नाकमाक्रमताँ तृतीयाम्।

(अथर्व ६/५/२४)

ब्रह्मचर्य आश्रम में बल बुद्धि, गृहस्थ आश्रम में परिवार निर्माण के उपरांत तीसरे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता हूँ। तपश्चर्या और ज्ञानार्जन सहित परमार्थ साधन करूँगा।

पुरुषों की तरह ही महिलाएँ भी वानप्रस्थ में प्रवेश कर सकती हैं। पति-पत्नी दोनों साथ-साथ इस पुण्य प्रयोजन में संलग्न हो सकें तो उसकी शास्त्रकारों ने पूरी छूट दी है। यों पत्नी से कष्टसाध्य तपस्वी जीवन के लिए आवश्यक तितीक्षा न हो, शिक्षा, योग्यता और भावना के अभाव में उस महान व्रत धारण में कठिनाई अनुभव हो तो घर रहना भी अच्छा है। पति को एकाकी जीवन साधना करने में सुविधा हो तो उन्हें वैसा करने देना चाहिए।

संत्यज्य ग्राम्य माहारं सर्व चैव परिच्छदम्
पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य बन गच्छेत्सहैववा।

(मनु ६/३)

रजोगुणी आहार विहार छोड़कर वानप्रस्थी जीवन में प्रवेश करें। पुत्रों पर पत्नी की जिम्मेदारी सौंप दें अथवा उसे भी साथ ले जाएँ।

वानप्रस्थ की महत्ता

मानव जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। वर्तमान परिस्थितियों में ६० वर्ष से ऊपर की आयु को वानप्रस्थ एवं संन्यास के मिश्रित आश्रम के रूप में समझा जा सकता है।

आश्रम धर्म में यह वानप्रस्थ जीवन ही भारतीय धर्म की महान संपदा रही है। उसी पूँजी के बल पर इस देश के नागरिकों का स्तर देवोपम रहा है, यह भूमि स्वर्गादपि गरीयसी कहलाती रही है। ज्ञानवान, प्रतिभावान, परिष्कृत, भाव-संपदा से सुसंपन्न, निःस्वार्थी लोकसेवियों की सेना जीवन क्रम के इसी मंच से निकलती रही है। वही विकृतियों से जूझी है। उसी ने सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन किया है। जनमानस को पतनोन्मुख होने से उसी ने बचाया है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों को विकसित करने में उसी की प्रमुख भूमिका रही है। अनुकरणीय सत्कार्यों का बाहुल्य उसी के प्रयास से संभव हुआ है। इस धर्मसेना ने ही असुरता को हराया और देवत्व को जिताया है। यही है प्राचीन भारत की गौरव-गरिमा का रहस्य। वर्णाश्रम धर्म के आधार पर बिना वेतन के न्यूनतम निर्वाह लेकर समाज की अति महत्त्वपूर्ण सेवाएँ कर सकने में समर्थ अनुभवी, सुयोग्य एवं भावनाशील प्रतिभाएँ आगे आती थीं और मानव जाति के उत्कर्ष के लिए अपने को समर्पित करती थीं। इतनी बड़ी पूँजी के आधार पर यदि भारत-भूमि विश्व की मुकुटमणि बनकर रही हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! उन महान परंपराओं को खोकर ही हम मणिहीन सर्प की तरह निर्जीव और निस्तेज बनकर कूड़े के ढेर में पड़े हैं। स्वस्थ परंपराओं की बहुमूल्य संपत्ति को नष्ट-भ्रष्ट करने पर यह दुर्गति होनी ही थी, जिसने हमें अत्यंत कष्टकर त्रास के चंगुल में बेतरह जकड़ लिया है। वानप्रस्थ आश्रम की इस महत्ता पर हमें गंभीर चिंतन-मनन करना चाहिए।

वर्णाश्रम धर्म की महान पृष्ठभूमि

आश्रम धर्म के अंतर्गत सबसे महान और सबसे महत्वपूर्ण आश्रम इन दिनों वानप्रस्थ ही हो सकता है। प्राचीन काल में भी उसी की गरिमा सर्वोत्कृष्ट थी। व्यक्ति अपना आधा जीवन भौतिक प्रयोजनों के लिए रखकर चढ़ते खून के उभारों को सही दिशा में

खर्च कर लेता था। परिवार संस्था की सेवा करता था। राष्ट्र की भौतिक समृद्धि के अभिवर्धन में योगदान देता था। पुरुषार्थ के बढ़े-चढ़े अवसरों के सहारे अनेक उपयोगी सफलताओं का सृजन करके प्रगतिशील संभावनाएँ प्रस्तुत करता था। धन, श्रम एवं समर्पण से सत्प्रवृत्तियों का पोषण करता था।

जीवन का उत्तरार्ध भारतीय संस्कृति के निर्माणकर्त्ता मनीषियों की दृष्टि से परमार्थ प्रयोजनों के लिए ही नियत-निर्धारित किया गया है। इसमें व्यक्ति और समाज दोनों का ही हित साधन सन्निहित है। पूर्वार्ध व्यतीत कर लेने के उपरांत व्यक्ति को इंद्रियजन्य वासनाओं और मनोविकारों से संबद्ध तृष्णाओं की निरर्थकता का तब तक भली-भाँति अनुभव हो चुकता है और उसकी लिप्सा-लालसाएँ आयु ढलने के साथ-साथ समाप्त नहीं तो शिथिल अवश्य हो लेती हैं। लोभ और मोह के आवेशों का खोखलापन स्पष्ट हो लेता है। ऐसी दशा में आंतरिक उद्वेगों की धमाचौकड़ी घट जाने से अंत:स्थिति में विवेक और संतुलन की उतनी ही मात्रा उत्पन्न हो जाती है, जिससे आत्मकल्याण एवं परमार्थ प्रयोजन के लक्ष्य की ओर शांति, स्थिरता एवं गंभीरतापूर्वक कदम बढ़ सकें।

वानप्रस्थ के तीन चरण

(१) ब्रह्मविद्या का पारायण : आत्मा की भूख बुझाने के लिए नए सिरे से विद्याध्ययन करना पड़ता है। ज्ञानामृत से परिपूर्ण व्यक्ति ही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करते हैं और लोक-निर्माण जैसे महान प्रयोजनों के अधिकारी बनते हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

(२) तप, साधना, योगाभ्यास : आत्मा पर चढ़े हुए कषाय-कल्मष और मल, आवरण एवं विक्षेपों का निवारण-निराकरण इसी संस्कार द्वारा संभव होता है। बनी हुई आंतरिक प्रखरता इसी मार्ग पर चलने से निखरती है। आत्मबल के संपादन का प्रधान मार्ग तप ही तो है। आत्मा को देवात्मा बनाते हुए उसे परमात्मा स्तर तक

पहुँचा देना योग-साधना द्वारा ही संभव है। इसलिए तप-साधना का परम पुरुषार्थ भी करना पड़ता है। ब्रह्मतेजस उसी से निखरता है। इसी बलिष्ठता की समर्थता के आधार पर व्यक्ति अपनी जीवन नौका को खेता हुआ लक्ष्य तक ले पहुँचता है और साथ ही उसमें बिठाकर अनेक को पार कर सकता है।

(३) सेवा-साधना : भौतिक सेवा-साधना तो धनीमानी लोग कर सकते हैं, पर जनमानस में उत्कृष्टता को बोना, उगाना और बढ़ाना केवल ब्रह्मपरायण लोगों के लिए ही संभव होता है। उसे बकवादी वक्ता पूरा नहीं कर सकते। धर्मशाला, मंदिर, प्याऊ, सदावर्त, विद्यालय, चिकित्सालय, उद्योगशाला, व्यायामशाला जैसे अर्थसंभव परमार्थ-प्रयोजन धनीमानी लोग ही पूरे करते हैं। उनके धन का सदुपयोग भी ऐसे ही कार्यों में है, किंतु उच्चस्तरीय भावनाओं और प्रवृत्तियों का जनमानस में आरोपण-अभिवर्धन केवल उच्चकोटि के परमार्थपरायण व्यक्ति ही कर सकते हैं। धनलोलुप प्रचारक तो लोकरंजन भर कर सकते हैं। उनकी उछल-कूद सुनने वालों का कौतूहल ही तृप्त कर सकती है। किसी को बदल सकना उनके लिए अशक्य है। जिसने अपने को ही नहीं बदला, वह दूसरों को कैसे बदलेगा! वक्ता और प्रचारकों की सेना हर संस्था द्वारा भरती की जाती है, पर उससे प्रोपेगण्डा एवं धन उपार्जन के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता। ऊँचा उठाने और परिवर्तन करने के लिए ऐसे व्यक्तित्व ही समर्थ हो सकते हैं, जो स्वयं ऊँचे उठे हैं, जिन्होंने अपना परिवर्तन किया है। समाज की इस महती सेवा-साधना को ज्ञानवृद्ध तपस्वी एवं सेवापरायण वानप्रस्थ ही पूरा कर सकते हैं।

पछताना नहीं पड़े-सांसारिक दृष्टि से जीवन का उत्तरार्ध तो पीड़ा, असमर्थता, अपमान और उपेक्षा की अवधि है। ज्ञानेन्द्रियाँ साथ छोड़ती जाती हैं और कर्मेन्द्रियों की शिथिलता बढ़ती जाती है। अनुपयोगी, भारभूत, निठल्ला और उपेक्षित-उपहास्पद जीवन काटना कठिन हो जाता है। एक-एक दिन भारी पड़ता है। गुजरे दिन याद

आते हैं तो काँटे जैसे, डंक जैसे चुभते हैं, खीझ बढ़ती है और स्वभाव में चिड़चिड़ापन आता है। कहाँ जाएँ, कहाँ बैठें, ऐसे ही तानाबाना बुनते रहते हैं, पर चैन कहीं नहीं! जहाँ भी जाएँ, उपेक्षा अवज्ञा ही हाथ लगती है।

जीवन का उत्तरार्ध भौतिक दृष्टि से अपने लिए कष्टकारक और परिवार के लिए क्रमशः अधिकाधिक भारभूत होता चला जाता है। वे दिन भी निकट आते हैं, जब स्वयं भगवान से मौत माँगनी पड़ती है और घर वाले मन ही मन वैसी प्रार्थना-कामना करते हैं। इस हेय स्थिति के आने से पूर्व यदि समय रहते सजग हो सका जाए और अध्यात्म-भूमिका में प्रवेश करके अपनी गतिविधियों को वानप्रस्थ स्तर की बना लिया जाए तो प्रतीत होगा कि नया जन्म हो गया। पूर्वार्ध जितना आनंदमय और शानदार था, उससे हजार गुनी अधिक प्रसन्नता और सरसता प्रदान करने वाली संजीवन बूटी हाथ लग गई। वानप्रस्थ की विधि-व्यवस्था दूरदर्शी ऋषि मनीषियों ने इसी दृष्टि से बनाई और उसे सांस्कृतिक जीवन-प्रक्रिया में अत्यंत उच्चकोटि का स्थान दिया है।

व्यक्ति और समाज का अभिनव निर्माण

वानप्रस्थ परंपरा व्यक्तिगत हितसाधन की दृष्टि से अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण कदम है। ढलती आयु नए स्तर का आनंद उठाने और नया जीवन जीने की दृष्टि से ही उपयुक्त होती है। आध्यात्मिक और पारमार्थिक गतिविधियाँ अपनाकर जीवन के उत्तरार्ध को इतना मृदुल और सरस बनाया जा सकता है, मानो नवीन जन्म ग्रहण किया गया है। जिस प्रयोजन के लिए यह शरीर मिला है, मानव जन्म का जो परम लक्ष्य है, उसका अधिक उत्तम सुअवसर तो उत्तरार्ध में ही मिलता है। मानसिक उभार उतर जाने और परिवार का भार हल्का हो जाने से मन भी अच्छी तरह लगता है और चित्त के डाँवाडोल होने की, लुढकने-फिसलने की आशंका भी कम रहती है। मरण का दिन समीप आता देखकर परमार्थ की पुण्य-

पूँजी संग्रह करने के लिए, अगले जन्म में ऊँची स्थिति पाने के लिए उत्कण्ठा जाग्रत होती है और अधिक गंभीरतापूर्वक इस जीवन की उन गतिविधियों को अपनाया जा सकता है, जो चढ़ती उम्र में प्राय: अस्वीकार और कठिन लगती थी। यह ढलती आयु ऐसे अनुदान-वरदान लेकर आई है, जिनका जवानी के दिनों में मिल सकना कठिन है। ऐसे चिंतन के रहते किसी को पूर्वार्ध के बीत जाने से दु:खी होने, पछताने की जरूरत नहीं पड़ती वरन् यह अधिक महत्वपूर्ण अवसर हाथ लगने का संतोष ही होता है। यह सब तो हुआ व्यक्तिगत हितसाधन की दृष्टि से वानप्रस्थ आश्रम का महत्व। आगे सामाजिक दृष्टि से भी इस आश्रम में महत्त्व पर विचार करेंगे।

सामाजिक दृष्टि से भी वानप्रस्थ का महत्व

किसी देश या समाज के उत्कर्ष की समस्त आशाएँ और संभावनाएँ वानप्रस्थियों की सक्रियता पर केन्द्रित हैं। योजनाएँ अगणित हैं। अगणित विचारशक्ति से व्यक्ति एक से एक उत्तम योजनाएँ बनाते हैं, बना सकते हैं, पर सबसे बड़ी कठिनाई एक ही होती है कि उन्हें कार्यान्वित कर सकने वाले सुयोग्य व्यक्ति मिलते ही नहीं। फलस्वरूप वे कागजों में लिखी और मस्तिष्कों में बिखरी रहकर ही हवा में विलीन हो जाती हैं।

लोक-निर्माण का कार्य इतना सरल नहीं है कि उसे किसी भी ऐरे-गैरे के सुपर्द किया जा सके। उसके लिए अनुभवी, सुयोग्य, ईमानदार, सक्षम, लगनशील और प्रभावशाली कार्यकर्त्ता चाहिए। ऐसे लोग संस्थाओं के पास भी नहीं हैं। उनमें भी ओछी प्रकृति के यशलोलुप व्यक्ति भरे पड़े हैं। सरकार के पास भी उपयुक्त व्यक्ति नहीं हैं। जनसहयोग के बिना कोई योजना सफल नहीं हो सकती, यह स्पष्ट है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यह सहयोग जुटाना ऐसे व्यक्तित्वों का ही काम है, जिनके प्रति जन

सामान्य की सहज श्रद्धा उभरती है। ऐसे व्यक्तित्ववान लोग वानप्रस्थ से ही मिलेंगे।

लोककल्याणकारी संस्थाओं की स्थिति

लोक-कल्याण के लिए विनिर्मित संस्थाओं की स्थिति और भी अधिक दयनीय है। यश-प्रशस्ति के लिए थोड़ी विज्ञापनबाजी करना महत्वाकांक्षी लोगों के लिए एक धंधा बन गया है। तरह-तरह के आडंबर सभा, सम्मेलन, संगठन, संस्थान, जुलूस, पोस्टरों की इन दिनों बहुत धूम है। नित नई संस्थाएँ बनती और बिगड़ती रहती हैं। पदों के लिए लड़ने-मरने वाले, पर्दे के पीछे कई तरह के स्वार्थ साधन करने वाले लोगों का सार्वजनिक संगठनों में बोलवाला है। विविध संस्थाओं का ढांचा कागज के बने रावण की तरह विशाल कलेवर तो बनाए खड़ा है, पर भीतर ही भीतर खोखली पोल भरी पड़ी है। यही कारण है कि काम नहीं के बराबर और आडंबर पहाड़ के बराबर दृष्टिगोचर होता है। प्रगति के विभिन्न प्रयोजनों को लेकर बने हुए इतने अधिक संस्था-संगठनों, तथाकथित लोकसेवियों-नेताओं के रहते हुए एक इंच भी आगे खिसक सकना संभव नहीं हो सके तो समझना चाहिए कि आडंबर ने यथास्थिति को कुचल-मसलकर रख दिया है।

इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का एक ही कारण है-सद्भावना संपन्न, सुयोग्य एवं कर्मठ कार्यकर्त्ताओं का अभाव। मिशन अनेक बने हुए हैं और बन रहे हैं, पर मिशनरियों का कहीं पता नहीं। ऐसी दशा में लोकशक्ति को जगाना, लोकमंगल का प्रयोजन पूरा कर सकना किस प्रकार संभव होगा ?

जनता की स्थिति—शोचनीय

जनता की स्थिति भी अब अजीब बन चली है। वक्ताओं और नेताओं की कथनी तथा करनी में जमीन-आसमान जितना अंतर देखकर अपीलों तथा धुँआधार भाषणों का असर ही समाप्त हो

चला है। स्पीचें सुनने या तो लोग आते ही नहीं, आते भी हैं तो उथला मनोरंजन मात्र करके पल्ले झाड़ते हुए वहीं पहुँच जाते हैं, जहाँ से आए थे। जब नेता और अभिनेता एक ही पंक्ति में गिने जाने लगें तो यह आशा कैसे की जाए कि जनता उनका कोई कारणसाध्य अनुकरण स्वीकार करेगी। अब हड़तालें कराना भर एक काम ऐसा है, जिसे कोई भी नेता आसानी से करा सकता है, जिन में कुछ त्याग और सुधार की कष्टसाध्य बात हो, उसे मानना तो दूर कोई सुनने तक को तैयार नहीं। ऐसी स्थिति बन जाने में मात्र जनता की अनास्था ही दोषी नहीं है वरन् अधिक खोट उन लोकसेवियों का है, जिनने अपने को अविश्वासी सिद्ध करने के साथ-साथ उच्च आदर्शों से भी लोक-निष्ठा डगमगा दी है।

वानप्रस्थ से लोकसेवक नेतृत्व

उज्ज्वल चरित्र, सुसंस्कृत और निःस्वार्थ लोकसेवानिरत व्यक्ति ही अग्रिम पंक्ति में खड़े होकर जनता का सही मार्गदर्शन कर सकते हैं। ऐसे नेतृत्व का उत्पादन वानप्रस्थ आश्रम की ही खदान से होता रहा है और हो सकता है। यदि वानप्रस्थ की पुण्य परंपरा चल पड़े तो एक से एक बढ़कर सुयोग्य और भावनाशील लोकसेवी विभिन्न सत्प्रवृत्तियों में संलग्न दृष्टिगोचर हो सकते हैं और बिना वेतन भार उठाए, जनता को ऐसे कार्यकर्त्ता लाखों की संख्या में मिल सकते हैं, जो अवांछनीयताओं के विरुद्ध मोर्चाबंदी कर कट-कट कर लड़ने के लिए साहसी शूरवीरों की भूमिका प्रस्तुत कर सकें। रचनात्मक सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन इन्हीं लोगों के द्वारा होगा। अवैतनिक सेवा-साधना में संलग्न उच्चकोटि के सुनिश्चित एवं अनुभवी व्यक्ति जिस कार्य को भी हाथ में लेते हैं, जनता का अजस्र सहयोग उपलब्ध करते हैं और निश्चित रूप से सफल होते हैं। नव निर्माण की बहुमुखी प्रवृत्तियों में संलग्न होकर ऐसे लोग देश को कितनी जल्दी आगे बढ़ा सकते

हैं, ऊँचा उठा सकते हैं, इसकी कल्पना मात्र करने से आँखें चमकने लगती है।

नव निर्माण की, पुनरुत्थान की सभी दिशाएँ सूनी पड़ी हैं। शिक्षा, संस्कृति, समाज, स्वास्थ्य, आजीविका, विनोद जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र जनसहयोग से ही समुन्नत और सुव्यवस्थित हो सकते हैं। बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में संव्याप्त गगनचुंबी विकृतियों के विरुद्ध मोर्चा खड़ा कर सकना और उससे जूझ कर विजय प्राप्त कर सकना, केवल लोकशक्ति के लिए संभव है। उसी को गठित, सुदृढ़ और परिष्कृत करना होगा। यही है आज का अतिशय महत्वपूर्ण कार्य, जिसे बिना कल की प्रतीक्षा किए आज ही आरंभ करना चाहिए।

भावनाशील राष्ट्र-निर्माण में जुटें

सबसे बड़ी, सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता एक ही सामने उपस्थित होती है, सुयोग्य भावनाशील, अवैतनिक और सेवा की उत्कृष्ट लगन के साथ राष्ट्र-निर्माण में जुट पड़ने वाले कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की। इस अभाव को पूरा किए बिना कोई गति नहीं, कोई राह नहीं, कोई आशा नहीं। इस प्रयोजन को वानप्रस्थ परंपरा का पुनर्जागरण करके ही पूरा किया जा सकता है। यदि इस दिशा में एक प्रबल और सुव्यवस्थित आंदोलन खड़ा किया जा सके तो इस धर्मप्राण देश में प्राचीन संस्कृति की रक्षा की भावना से प्रेरित अगणित व्यक्ति आगे आ सकते हैं।

लोकसेवियों का अभाव नहीं, प्रशिक्षण की जरूरत है

भारत में धर्म, अध्यात्म और संस्कृति के प्रति अभी भी आस्था का सर्वथा अभाव नहीं हुआ है। भौतिकवादी विचारधारा ने नास्तिकवाद को प्रोत्साहन अवश्य दिया है और धर्मध्वजी वर्ग के कुकर्मों ने जनमानस में धर्म के प्रति उपेक्षा, अवज्ञा एवं आक्रोश का भाव अवश्य पैदा किया है। इतना सब होने पर भी स्थिति अभी इस

सीमा तक नहीं पहुँची है कि धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए आरंभ किए गए प्रचण्ड अभियान को सर्वथा उपहास्पद ठहरा दिया जाए और उसकी प्रतिक्रिया उदासीनता एवं निराशा के रूप में सामने आए। हर धार्मिक व्यक्ति वृद्धावस्था में शांति प्राप्त करना और परमार्थ-साधना की बात सोचता अवश्य है, भले ही परिस्थितियाँ उसे वैसा अवसर प्राप्त ही न होने दें। जिनमें थोड़ा उत्साह है, वे साधु बाबाओं के आश्रम में दिन काटते रामनाम जपते और तथाकथित सत्संग में उलझे देखे जा सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संख्या गिनी जाए तो वह लाखों तक अभी भी पहुँचेगी। यदि इन्हें सही मार्गदर्शन मिला होता तो वे आत्मकल्याण के साथ लोकमंगल के क्षेत्र में प्रवेश कर सकते थे और निर्माण के महान प्रयोजन की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर सकते थे।

परंपरा का राजमार्ग मौजूद है। भावनाओं का अभाव नहीं। परमार्थ के प्रति आस्था अपनी जगह यथावत विद्यमान है। इसलिए यदि वानप्रस्थ को पुनर्जीवित किया जाए, उसके लिए ओजस्वी आह्वान किया जाए, आगे आने वाले व्यक्तियों का उचित प्रशिक्षण और मार्गदर्शन किया जाए तो कोई कारण नहीं कि लाखों की संख्या में प्रचण्ड क्षमता संपन्न लोकसेवी कार्यक्षेत्र में उतारे न जा सकें। यह संभावना मूर्तिमान हो सकती है, होनी चाहिए। तदनुसार विश्वासपूर्वक यह आशा भी की ही जा सकती है कि राष्ट्र के सर्वतोमुखी नवनिर्माण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा उपयुक्त कार्यकर्त्ताओं की कमी दूर होकर रहेगी और धरती पर स्वर्ग अवतरण एवं मनुष्य में देवत्व के उदय का स्वप्न साकार होकर रहेगा।

वानप्रस्थ के तीन स्तर

वानप्रस्थ तीन स्तरों में विभाजित है—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। सर्वोत्तम वह स्थिति है, जिसमें पारिवारिक उत्तरदायित्व को अन्य विश्वस्त एवं निष्ठावान परिजनों पर छोड़ कर स्वयं पूरा समय परमार्थ-प्रयोजन में लगाने के लिए तत्पर हो जाए।

इस युग की महानतम आवश्यकता और विश्वमानव की सेवा-साधना एक ही है-जनमानस का भावनात्मक नवनिर्माण। इसके लिए ज्ञानयज्ञ की विचार क्रांति शृंखला इन दिनों चल रही है, इस केन्द्र पर ही प्रत्येक विचारशील का ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। इस चरण को पूरा करने के बाद ही रचनात्मक एवं संघर्षात्मक कार्य हो सकता है। उद्योग, शिल्प, चिकित्सालय, मंदिर, धर्मशाला, प्याऊ, सदावर्त आदि कितने ही लोकोपयोगी कार्य हो सकते हैं, पर वानप्रस्थ को एक ही लक्ष्य सामने रखना चाहिए- विचारक्रांति, बौद्धिक परिष्कार, भावनात्मक नवनिर्माण। इसी से संबद्ध सेवा-कार्य हाथ में लिए जाएँ। यह कार्य प्रत्यक्ष में नहीं देखा जाता और उसका परिणाम इमारतों की तरह आँखों के सामने नहीं आता, इसलिए उथली तबियत के लोग इस दिशा में उदासीन देखे जाते हैं और ऐसे कार्य पकड़ते हैं, जिन्हें आँखों से देखा जा सकता है।

उत्तम स्तर - वानप्रस्थ परिव्राजक स्तर की जीवनचर्या अपनाते हैं। वे आश्रम बनाकर नहीं बैठते, वरन् जहाँ भी सत्प्रवृत्तियों के अंकुर उगे हुए हैं, उन्हें सींचने के लिए यत्र-तत्र भ्रमण करते हैं। लोग आरंभिक उत्साह में कई तरह की सत्प्रवृत्तियाँ आरंभ करते हैं। पीछे जोश ढीला पड़ते ही वे मुरझाने लगते हैं। यही बात व्यक्तिगत उत्साह पर लागू होती है। कितने ही व्यक्ति आवेशपूर्वक परमार्थ पथ पर चलने के लिए अग्रसर होते हैं। पीछे वे भी ढीले हो जाते हैं। इस प्रकार व्यक्तियों का, सत्प्रवृत्तियों का मुरझाना आरंभ हो जाता है। आकांक्षा रहते हुए भी शिथिलता कुछ करने नहीं देती। ऐसी प्रवृत्तियों और ऐसे व्यक्तियों से संपर्क बनाकर उनमें उत्साह उत्पन्न करना और पुनः जाग्रति करने के लिए उपदेश करना ही नहीं कंधे से कंधा, कदम से कदम मिलाना भी आवश्यक होता है। यह कार्य उत्तम वानप्रस्थ को निरंतर करना पड़ता है।

मध्यम स्तर-मध्यम वानप्रस्थी वे हैं, जिनके लिए घर-परिवार के बीच रहते हुए अपने समीपवर्ती क्षेत्र में काम करना अधिक

सुविधाजनक पड़ता है। इसमें वे परिवार को मार्गदर्शन, परामर्श, नियंत्रण और सहयोग का लाभ भी यथासंभव देते रहते हैं। सुविधाजनक जीवनयापन का सुयोग भी मिलता रहता है और समीपवर्ती परिचय क्षेत्र में अपना काम भी करते रहते हैं। कोई विशेष अड़चन आ जाए तो बात दूसरी है अन्यथा उनका अपनी रुचि का विषय परमार्थ ही होता है। अपने समय, श्रम और मनोयोग को उसी में लगाते हैं। घर पर रहते हुए भी जल में कमल जैसी स्थिति ही बनाए रहते हैं। एकांत निवास के लिए घर में या किसी निकटवर्ती देवालय आदि में अपना निवास रखते हैं, जिससे अपने विरक्त स्तर का भान निरंतर होता रहे।

कनिष्ठ स्तर-कनिष्ठ वानप्रस्थ वह है जिसमें पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह भी जुड़ा हुआ है। बच्चे छोटे हैं, पत्नी शारीरिक अथवा मानसिक दृष्टि से रुग्ण है। अन्य विवशताएँ ऐसी हैं, जिनमें घर छोड़कर अन्यत्र जा सकना संभव नहीं। परिवार के लिए आजीविका उपार्जन करने से छुटकारा नहीं। ऐसी स्थिति में कनिष्ठ वानप्रस्थ लिया जा सकता है, किंतु उसमें भी दो शर्तें तो पालनी ही पड़ती हैं। एक यह कि संतानोत्पादन उत्तम और मध्यम वानप्रस्थी की तरह ही बंद कर दिया जाए और कम से कम चार घंटे प्रतिदिन अपने समीपवर्ती क्षेत्र में ज्ञानयज्ञ एवं सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में लगाते रहें। प्रभु समर्पित जीवन में गहन आस्था रखते हुए घर परिवार के संरक्षक, माली जैसी ईश्वरीय नियुक्ति की मान्यता अपने संबंध में रख सकते हैं। छुट्टी के दिनों प्रव्रज्या के लिए अधिक दूर तक जा सकते हैं, किंतु साधारण समय में समीपवर्ती संपर्क क्षेत्र ही उनकी प्रव्रज्या की परिधि बना रह सकता है। इतना साहस कर सकने वाले भी ढलती आयु के श्रेष्ठतम सदुपयोग वानप्रस्थ का एक सीमा तक लाभ उठा सकते हैं।

लकीर के फकीर न बने रहें

वानप्रस्थ, संन्यास की लकीर पीटते हुए मरे मुर्दे जहाँ-तहाँ निकम्मी लाशों की तरह गिरे-पड़े और सड़ते हुए देखे जा सकते हैं। गृहकलह से ऊबे हुए, पग-पग पर अपमानित होते हुए, आलस और प्रमाद से अपनी आदतों को घिनौनी बनाए हुए, चैन की साँस लेने और मुफ्त की रोटी तोड़ने के लिए जिस-तिस आश्रम में जगह घेरे पड़े पाए जा सकते हैं। उल्टी-सीधी माला सटक लेने और जिधर-तिधर देवदर्शन की मटरगस्ती करते हुए तथाकथित सत्संगों में ऊँघते हुए हजारों लाखों व्यक्ति जहाँ तहाँ पाए जा सकते हैं। कोई वानप्रस्थ का बाना पहने है, किसी ने संन्यास के कपड़े रंग लिए हैं। इन भू-भार जीवित मृतकों की संख्या में और वृद्धि करना अपना तनिक भी उद्देश्य नहीं। हमें तो तेजस्वी, मनस्वी, कर्मवीर और आत्मकल्याण तथा विश्व कल्याण में प्रबल पुरुषार्थ के लिए जुट पड़ने वाले परमार्थपरायण व्यक्तित्व चाहिए। उन्हीं को वानप्रस्थ में प्रवेश करने का आमंत्रण दिया जा रहा है।

आस्थाहीन व्यक्ति—वानप्रस्थी नहीं बनें

वानप्रस्थ परक परमार्थ जीवन में प्रवेश करने वालों को जहाँ ज्ञान-साधना और योग-साधना द्वारा आत्मबल संपादन करना है, वहाँ लोकमंगल के लिए अपनी विभूतियों को समर्पित करते हुए विश्वमानव को अधिकाधिक श्रेष्ठ-समुन्नत बनाने में निरत-निमग्न भी रहना है। जिन्हें सेवा धर्म पर आस्था न हो, मात्र जप-तप और निवृत्तिपरक एकांत सेवन अथवा सुख-चैन के, बिना झंझट भरे दिन काटना हो, उन्हें इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए। वह स्थिति मरण काल आदि के निकट आ जाने पर थके-हारे और अशक्त- असमर्थ लोगों के लिए उपयुक्त हो सकती है। इसे वैराग्य निवृत्ति, संन्यास आदि अन्य किसी नाम से भले ही पुकारा जाए, पर इसे तेजस्वी वानप्रस्थ के साथ तो नहीं ही जोड़ा जा सकता।

हम समाजद्रोही न बनें

मनुष्य को जहाँ समाजप्रदत्त अगणित सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं। वहाँ उसे इस उत्तरदायित्व से भी लाद दिया गया है कि वह सामाजिक उत्कर्ष के लिए बढ़-चढ़कर अनुदान प्रस्तुत करे और लोकसेवा की दृष्टि से इतना कुछ कर दिखाए, जिससे उस पर चढ़ा हुआ भारी ऋण किसी ना किसी प्रकार चुकता अथवा हल्का हो सके। जो इस उत्तरदायित्व की उपेक्षा करता है, वह समाजद्रोही कहा जा सकता है।

मिशन, संस्थाएँ, उद्देश्यहीन न बनें

देश में मिशनों की कमी नहीं। वे पहले से ही बहुत थे। अब तो और भी नित्य नए बनते और खुलते चले जा रहे हैं। यों इन सभी के पीछे सदुद्देश्यों के घोषणा पत्र छपे रहते हैं, पर इनमें अधिकांश का निर्माण व्यक्तिगत यश-लोलुपता की पूर्ति के लिए होता है। अमुक व्यक्ति की परोपकारी लोकसेवी श्रेयसाधकों में गणना होने लगे, जनता उन्हें जाने और सम्मान प्रदान करे, संचित सम्मान के आधार पर प्रकारांतर से आर्थिक लाभ व दूसरे लाभ उठाए जाएँ, प्राय: ऐसे ही छोटे कारण नई-नई संस्थाओं को जन्म देते हैं। इतने पर भी उन मिशनों की, संस्था-संगठनों की कमी नहीं, जो वस्तुत: सदुद्देश्य को लेकर ही विनिर्मित हुए हैं और जिनके पीछे व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ नहीं वरन् विशुद्ध परमार्थ की भावनाएँ ही काम करती हैं। उन्हें तो बढ़ना और फलना-फूलना चाहिए था, पर दुर्भाग्य इस बात का है कि बरसाती मेढ़क भले ही बंद हो जाते, पर उनका विकास तो होना ही चाहिए था, जो ठोस आधार और उच्च उद्देश्य को लेकर चले हैं। प्रगति प्रवाह उनका भी अवरुद्ध हो जाना, निश्चय ही एक दु:खद विडंबना है!

मिशनरियों की आवश्यकता

संस्थाओं एवं मिशनों के पतन के कारण की गहराई से तलाश करने पर निष्कर्ष एक ही उभरकर आता है कि मिशन तो हैं, पर मिशनरियों का पता नहीं। महत्व संस्थानों का नहीं, उन व्यक्तित्वों का है, जो बीज की तरह गलकर संगठनों के विशालवृक्ष विनिर्मित करते हैं। त्याग-बलिदान का खाद-पानी पाए बिना, प्रखर व्यक्तित्वों का श्रम और संरक्षण पाए बिना किसी मिशन का फलना-फूलना संभव नहीं। नींव में मजबूत पत्थर भरे हों तो ही सुदृढ़ इमारत खड़ी हो सकेगी। यह कार्य मिशनरी अपने समय-श्रम का, हाड़-माँस का, त्याग-बलिदान का अनुदान देकर ही पूरा करते हैं और उसी पोषण को पाकर मिशन विशालकाय वटवृक्ष के रूप में परिणत-विकसित होते हैं। यह आवश्यकता पूरी न की जा सकी तो फिर संस्थापित मिशनों में से किसी का भी समुचित विकास न हो सकेगा। वह लेटरपेड, रजिस्टर और बोर्ड की विडंबना में ही उलझे हुए जहाँ के तहाँ अवरुद्ध पड़े रहेंगे।

वानप्रस्थ-संन्यास का सही स्वरूप समझा जाए

सेवा धर्म की बात वृद्धों को सूझती ही नहीं। आत्मचिंतन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास के आदर्श उनके सामने रहते ही नहीं। ऐसी दशा में वानप्रस्थ की उपयोगिता बेचारे समझ भी कैसे सकेंगे ? बहुत हुआ तो निवृत्ति और शांति के बहाने किसी आश्रम में कमरा बनाकर जिंदगी के सड़े-गले दिन गुजारने के लिए जा पड़ते हैं और देवदर्शन की, कथा-भजन की लकीर पीटते हुए समय गुजारते हैं। इन दिनों वानप्रस्थ-संन्यास का यही मृतक जैसा जीवनक्रम है। कई चतुर लोग तो अपनी प्रचुर संपत्ति अपने बेटे-पोतों को बाँट जाते हैं और भिक्षा की रोटियाँ खाकर प्रकारांतर से घर वालों को ही लाभान्वित करते हैं। ऐसी मोहग्रस्त विडंबना को उपहास्पद ही कहा जा सकता है। जरा-जीर्ण मनुष्य

घरवालों से सेवा लेने का व्यावहारिक मार्गदर्शन छोड़कर अपना भार किन्हीं आश्रमों पर डालें, तो यह लोकसेवा कहाँ हुई ! यह तो समाज पर उलटा भार बढ़ाना हुआ। वानप्रस्थ तो उस आयु से लिया जाना चाहिए, जब कि कम से कम दस-पंद्रह वर्ष तो कसकर कामकर सकने की क्षमता शरीर और मन में शेष रह गई हो। उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमें उपयुक्त व्यक्तियों को प्रेरणा देते हुए, वानप्रस्थ परंपरा को पुनर्जीवित करना चाहिए।

मन:स्थिति यदि विशेष पुत्रैषणा, लोकैषणा से ऊँची उठ गई है, संपन्नता, विषय लोलुपता और यशलिप्सा की ललक यदि काबू में आ गई है और परिवार की जिम्मेदारियों का भार नहीं है तो हर आयु वानप्रस्थ के लिए उपयुक्त हो सकती है।

महिला वानप्रस्थों की आवश्यकता

आमतौर से यह समझा जाता है कि वानप्रस्थ, संन्यास आदि माध्यमों का अवलंबन लेकर परमार्थ जीवन में प्रवेश करने का अधिकार केवल पुरुषों को ही है। महिलाओं को घर-गृहस्थी के काम ही संभालने चाहिए। परिवार के उत्तरदायित्वों से निवृत्ति मिलने की स्थिति होने पर भी उन्हें घर में ही रहना चाहिए। अधिक से अधिक यह सोचा जा सकता है कि यदि पति वानप्रस्थ ग्रहण करे तो उसकी सेवा-सहायता के लिए वह भी साथ जा सकती है। इन्हीं मान्यताओं का प्रचलन रहने के कारण अपने देश में परमार्थपरायण महिलाओं की संख्या अत्यंत स्वल्प ही दृष्टिगोचर होती है। फिर कहीं कोई है भी तो उसका कार्यक्षेत्र किसी कुटी, आश्रम तक सीमित रह गया होगा। परिव्राजक जीवन बिताने की रीति-नीति अपनाने का साहस कोई बिरली ही कर पा रही होगी।

इस स्थिति को बदला जाना चाहिए और वातावरण ऐसा उत्पन्न किया जाना चाहिए कि उत्तरदायित्वों से निवृत महिलाओं को भी

विश्व मानव के पुनरुत्थान अभियान में उत्साहपूर्वक नियोजित किया जा सके।

महिला जागरण के लिए, पुरुषों में न्याय-बुद्धि उत्पन्न करने के लिए, समाज के कर्णधारों को जगाने के लिए, नर-नारी के बीच प्रस्तुत असमानता को हटाने को सहमत करने के लिए न जाने कितने बड़े प्रयास करने पड़ेंगे। नारी पुनरुत्थान की योजनाएँ इतनी गहराई के साथ खड़ी की जा सकें, तभी कुछ काम चलेगा। ऊपर की लीपापोती तो एक विनोद मात्र बनकर रह जाएगी।

नारी जागरण का नेतृत्व नारी संभालें

यह कार्य कौन करे? इन प्रयासों का नेतृत्व किसके हाथ से हो ? इसका सही उत्तर प्राप्त करने के लिए नारी का ही मुँह ताकना पड़ेगा। उसे ही अग्रिम पंक्ति में खड़ा करना पड़ेगा। पुरुष का इसमें प्रबल समर्थन होना ही चाहिए। आवश्यक साधन उसे ही जुटाने चाहिए। पीढ़ियों से चले आ रहे पाप का प्रायश्चित वह इसी प्रकार कर सकेगा कि नारी जागरण का प्रचण्ड आंदोलन खड़ा करने के लिए वह अधिक से अधिक ध्यान केन्द्रित करे और अधिक से अधिक साधन जुटाए। इतने पर भी इस महान अभियान का प्रत्यक्ष नेतृत्व नारी के ही हाथ में रहना चाहिए। अग्रिम पंक्ति में उसे ही खड़ा होना चाहिए। नारी से सीधा संपर्क स्थापित कर सकना, घरों में प्रवेश कर सकना, महिलाओं से जी खोलकर बातें कर सकना, उन्हें साथ लेकर चल सकना, केवल नारी के लिए ही संभव हो सकता है।

महिलाएँ अधिकाधिक वानप्रस्थी बनें

वर्तमान परिस्थिति पुकारती है कि महिलाओं को नारी जागरण का व्रत लेकर अधिकाधिक संख्या में वानप्रस्थी बनना चाहिए और जिस प्रकार पुरुषों के लिए पुरुष वर्ग में कार्यक्षेत्र खुला पड़ा है, उसी प्रकार अछूते नारी क्षेत्र में प्रवेश

करके उन्हें अपने विशिष्ट कर्तव्यपालन में जुट जाना चाहिए।

पुरुषों को लैक्चर झाड़ने के लिए पहले से ही पुरुष उपदेशकों की भीड़ बहुत बड़ी संख्या में मौजूद है। उसी में कुछ नारियाँ भी घुस पड़ें तो नारी के प्रति सहज आकर्षण होने का मनोविज्ञान उन्हें कुछ अधिक स्वागत प्रदान कर सकता है, पर उससे काम कुछ न बनेगा। महिला प्रचारिकाओं को अपना अछूता क्षेत्र ही सँभालना चाहिए और उसी के संदर्भ में सोचना-करना चाहिए। यों वे पुरुषों को भी आवश्यकतानुसार उद्‌बोधन करें, इसके लिए कोई बंधन नहीं है, पर स्मरण रहे, वह उनका मुख्य कार्यक्षेत्र नहीं है। सँभालना तो उन्हें नारी जागरण का मोर्चा ही चाहिए। उनके प्रवचन एवं कर्तृत्व का केन्द्रबिन्दु नारी कल्याण की महती आवश्यकता की पूर्ति को ही निर्धारित किया जाना चाहिए। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए महिला वानप्रस्थियों की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता पड़ेगी। सो उसकी पूर्ति के लिए प्रत्येक विचारशील को प्रबल प्रयत्न करना चाहिए।

महिला वानप्रस्थियों की श्रेणियाँ

पुरुषों की तरह महिला वानप्रस्थों की भी दो श्रेणियाँ हो सकती हैं-एक वे जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व शेष हैं और जो घर परिवार की देखभाल करते हुए अपने स्थानीय क्षेत्र में नारी जागरण के लिए थोड़ा-बहुत समय निकालती रह सकती हैं।

दूसरी वे जो देशव्यापी धर्म शिक्षण के लिए दूर-दूर तक जा सकने की सुविधा से संपन्न हैं, जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व दूसरों के कंधों पर चले गए हैं और बिना कठिनाई के परिव्राजक स्थिति अपना सकती हैं।

महिला वानप्रस्थों का एक तीसरा वर्ग भी हो सकता है, जो अपने पति वानप्रस्थों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती रह सकें। कुछ साधन संपन्न महिलाएँ छात्रावासों को अथवा सुयोग्य

संबंधियों को बच्चों के उत्तरदायित्व संभालकर भी सेवा क्षेत्र में उतर सकती हैं।

विधवाओं, परित्यक्ताओं के लिए स्वर्णिम अवसर

विधवाओं, परित्यक्ताओं और बड़ी आयु वाली कुमारियों का एक बड़ा वर्ग ऐसा है, जिसके लिए अब विवाह के द्वार एक प्रकार से बंद ही हो चुके हैं। बच्चों के उत्तरदायित्व जिन पर नहीं हैं, उनके लिए यह आत्मकल्याण और सेवा-साधना का पवित्रतम कार्यक्षेत्र ईश्वरीय वरदान की ही तरह मंगलमय माना जा सकता है। संतान न होने का लांछन लगाकर जिनके पति दूसरा विवाह करने के लिए आतुर हैं, वे रोज के ताने सुनती हुई अपने को बिना आग के जलते रहने से बचा सकती हैं। ऐसी महिलाएँ समझ सकती हैं, मानो प्रस्तुत असुविधाजन्य स्थिति ईश्वर ने उन्हें इसी विशेष प्रयोजन के लिए वरदान रूप में प्रदान की है। यदि भौतिक लालसाओं से विरत होकर वे इस प्रकार की भावनात्मक उत्कृष्टता अपनाने वाला साहस एकत्रित कर सकें तो समझना चाहिए उनका दुर्भाग्य सच्चे अर्थों में सौभाग्य बन गया। इससे वे अपना ही नहीं समस्त मानव समाज का, नारी समाज का हितसाधन करती हुई धन्य बन सकेंगी।

समयदानी वानप्रस्थी

जिन्हें जब जितना अवकाश हुआ करे, तब वे उतने समय के लिए परमार्थ-प्रयोजनों के लिए अपना समय लगाने का निश्चय करे और उन्हें कहाँ क्या करना है, इसका निर्देश युग निर्माण योजना, मथुरा से प्राप्त कर लिया करें। इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा समय भी अनेक व्यक्ति देने लगेंगे तो उन सब का सम्मिलित परिणाम बहुत बड़ा हो जाएगा। एक लाख व्यक्ति ऐसे थोड़ा-थोड़ा समय देने वाले हों तो उन सबका मिला हुआ कार्य हजारों नियमित

एक पूरे जीवन के लिए साधु संस्था में प्रवेश करने वालों जितना हो जाएगा। यह प्रक्रिया सरल बैठेगी। इस योजना के अंतर्गत व्यस्त और पारिवारिक बोझ से लदे हुए व्यक्ति भी थोड़ा बहुत समय देते रहेंगे तो उन्हें यह पश्चाताप न रहेगा कि हम घरेलू झंझटों में उलझे रहने के कारण युग की पुकार को पूरा न कर सके। पूरा न सही अधूरा सही, थोड़ा बहुत अवसर पाकर भी आत्मसंतोष की एक साँस ले सकते हैं और कह सकते हैं कि मानवता पर छाई हुई विषम बेला में हम मूकदर्शक बने रहने वाले अभागों में से नहीं हैं। जितना कुछ संभव था, उतना तो किया ही।

कहाँ, कैसे, कब और क्या करना होगा ?

इस युग में साधु संस्था का प्रतिनिधित्व उन वानप्रस्थों को करना है, जिनमें मात्र भावना ही नहीं लगन, योग्यता और पुरुषार्थपरायणता की भी कमी न हो। जो पहले अपने गुण, कर्म, स्वभाव का, चरित्र एवं व्यक्तित्व का निर्माण करें। आज ही लोकमंगल की क्रिया-प्रक्रिया में उसी तत्परता के साथ प्रयत्न करें, जिस प्रकार संसारी लोग अर्थ एवं प्रशंसा प्राप्त करने के लिए जी जान एक करते हैं। यदि ऐसे नर-रत्नों का उत्पादन-अभिवर्धन संभव हो सका तो आशा की जा सकेगी कि जनमानस का भावनात्मक नवनिर्माण संभव हो सकेगा और उस आधार पर संकटग्रस्त मानवता को अनेकानेक आपदाओं से उबारा जा सकेगा।

यदि निष्ठावान लोकसेवी पैदा न हो सके तो पतन के तूफानी प्रवाह को अन्य किसी उपाय से रोका न जा सकेगा। तब शिक्षा और संपदा बढ़ाने के लिए किए जाने वाले विविध विधि प्रयास बालक्रीड़ा की तरह चलते तो रहेंगे, पर उनसे बनेगा कुछ नहीं।

कहाँ, किसे, कब, कैसे, क्या करना पड़ेगा ? इसकी कोई चिरस्थायी 'लक्ष्मण रेखा' नहीं खींची जा सकती। व्यक्ति की योग्यता, अभिरुचि, समय की माँग, साधनों की सुविधा को देखते हुए कार्यक्रमों का निर्धारण और परिवर्तन होता रहेगा। बदलती हुई

परिस्थितियों में बदले हुए कदम उठाने के लिए हमें अपना मस्तिष्क खुला रखना होगा। लक्ष्य की पूर्ति के लिए कार्यक्रम बनते हैं। कार्यक्रमों के साथ लक्ष्य जोड़ा नहीं जा सकता। क्षेत्र एवं वर्ग की भूतकालीन परंपराओं के साथ भावनात्मक नवनिर्माण के लक्ष्य को जोड़ने से जो क्रिया पद्धति विकसित होती होगी, उसे बिना किसी दुराग्रह के अपना लिया जाएगा। हम सत्य और तथ्य के पुजारी हैं। हमें न्याय और विवेक का समर्थन करना है।

साधारणतया वानप्रस्थों का कार्यक्रम बौद्धिक क्रांति, नैतिक क्रांति, सामाजिक क्रांति की तैयारी में संलग्न होना है। हमारे सामने यह अछूता विस्तृत कार्यक्षेत्र खाली पड़ा है। जिसके बिना अन्य सब भौतिक योजनाएँ अपंग और असफल ही बनी रहेंगी। हमें किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी। अनीति और अविवेक के अतिरिक्त और किसी से हमारी कोई लड़ाई नहीं। सभी के सत्प्रयत्नों में सहयोग देंगे और सभी वर्ग के विचारशीलों की सद्भावना-सहकारिता का आह्वान करेंगे। न अपना छोटा दृष्टिकोण है और न संकीर्णता की परिधि में बैठी हुई अपनी कार्य पद्धति है। विशाल से विशाल काम की बात ही हमने सोची है और उसी को वानप्रस्थ संस्था सोचती अपनाती रहेगी।

नवनिर्माण के अंतर्गत व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण के विविध कार्यक्रम आते हैं। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज की अभिनव रचना अपने कर्तृत्व का प्रधान अंग है। इसके लिए प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं संघर्षात्मक गतिविधियाँ अपनाई जाएँगी। प्रथम चरण में प्रचार तंत्र को तीव्र किया जाएगा। ज्ञानयज्ञ को आलोक फैलाया जाएगा, विचार क्रांति का बीज बोया जाएगा।

व्यक्ति की अपनी-अपनी योग्यता होती है और अपनी-अपनी अभिरुचि। वानप्रस्थों में से किसे कहाँ किस प्रयोजन के लिए फिट किया जा सकता है, इसका निर्णय उसकी क्षमता एवं विशेषता का विश्लेषण करने के उपरांत ही किया जा सकता है।

यह समय-समय पर वानप्रस्थ संगठन सुदृढ़ बनने पर, निर्धारित किया जाता रहेगा।

कौन वानप्रस्थ-क्षेत्र में प्रवेश न करें

जिन की योग्यता, शिक्षा, प्रतिभा नगण्य है, जो जराजीर्ण हो चुके हैं, उनके लिए अपने घर पर रहना ही सर्वोत्तम है। अपनी स्थिति के अनुरूप वे अपने आसपास ही जो बन पड़े, सेवा कार्य करें। बाहर जाकर ज्ञानयज्ञ जैसे महत्वपूर्ण कार्य को वे कहाँ संभाल पाएँगे! सेवा करने की अपेक्षा अपने निर्वाह का भार बाहर वालों पर डालेंगे। उन्हें घर छोड़ने के लिए प्रोत्साहन देकर दिगभ्रांत नहीं करना चाहिए। अपने पर होने वाले खर्चे से अधिक मूल्य की सेवा कर सकना संभव न हो तो फिर जनता पर भार बनकर पुण्य के स्थान पर पाप क्यों कमाया जाए ? वानप्रस्थ के लिए हर किसी को नहीं, ऐसे व्यक्तियों को ही प्रोत्साहित करना चाहिए, जिनमें सेवा क्षमता की मात्रा पर्याप्त है। ऐसे लोगों के पास यदि घर की आजीविका है, तब तो उस सेवा साधना के दिनों में भी खर्च अपना ही करना चाहिए, ताकि पुण्य-परमार्थ का समुचित संचय हो सके। वैसा प्रबंध न हो तो अधिक से अधिक भोजन, वस्त्र जैसी निर्धन समाज के स्तर की निर्वाह सामग्री ही स्वीकार की जा सकती है। इससे अधिक कमाकर संचय करने की बुद्धि लेकर तो इस पवित्र क्षेत्र में किसी को प्रवेश ही नहीं करना चाहिए। धर्म को व्यवसाय बनाकर चलने वालों की तो घोर भर्त्सना ही की जा सकती है। वेतन, पारिश्रमिक या दान-दक्षिणा लेने की जिन्हें आवश्यकता प्रतीत हो, उन्हें वानप्रस्थ क्षेत्र में प्रवेश नहीं ही करना चाहिए।

अर्थ-संपन्न व्यक्ति सहयोगी बनें

सेवाभावी, सुयोग्य, प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति आर्थिक अड़चन के कारण वानप्रस्थी बनने में संकोच करते हैं, तो अर्थ-संपन्न व्यक्ति अपने यहाँ के सुयोग्य व्यक्तियों का खर्चा स्वयं देकर सहयोगी

बन सकते हैं। जो स्वयं तो वानप्रस्थ लेने की स्थिति में नहीं हैं, पर दूसरों को सुविधा-सहयोग देकर उनके मार्ग की अड़चन आर्थिक रूप से हल करने में समर्थ हैं, वे भी इस यज्ञ में आहुति दे सकते हैं। ऐसा प्रबंध बन पड़ने से भी अनेक सुयोग्य सेवाभावी किंतु आर्थिक अड़चन के कारण मन मसोसकर बैठने वालों का पथ प्रशस्त हो सकता है।

युग निर्माण परिवार के वानप्रस्थ क्या करेंगे ?

धर्मतंत्र के माध्यम से लोक-शिक्षण से ही रचनात्मक एवं संघर्षात्मक कार्यक्रमों का भी संचालन हो सकता है। इसका प्रत्यक्ष परिचय युग निर्माण परिवार की हजारों शाखाओं, शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों के क्रिया-कलापों को देखकर सहज ही समझा-देखा जा सकता है। युग निर्माण योजना का लक्ष्य बौद्धिक क्रांति, नैतिक क्रांति एवं सामाजिक क्रांति के माध्यम से जनमानस का परिष्कार प्रस्तुत करते हुए इस धरती पर स्वर्ग का अवतरण एवं मनुष्य में देवत्व का उदय करना है। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए आयोजनों में प्रवचन, उद्‌बोधन की आवश्यकता पूर्ति के लिए छोटे-बड़े कार्यानुष्ठानों एवं सम्मेलन आयोजनों की व्यवस्था की जाती है। इसके अतिरिक्त साहित्य का प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार ज्ञानयज्ञ की लपटें ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए पूरे उत्साह के साथ किया जाता है। झोला पुस्तकालय, ज्ञान मंदिर स्थापना, पत्रिकाओं के माध्यम से जन-जन के पास विचारधारा पहुँचाई जाती है। संगठन अपने सदस्यों में घनिष्ठता उत्पन्न करने, सद्‌भावना एवं सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने का प्रयत्न करता है और इस देव समाज को कुछ रचनात्मक कार्य आरंभ करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

युग निर्माण आंदोलन का कार्यक्षेत्र प्रधानतया देहात है। शहरों में पहले से ही इतने ज्यादा संगठन और आंदोलन खड़े कर लिए गए हैं कि इस जंजाल से जनता भ्रमग्रस्त होकर इन कार्यों में अरुचि एवं उपेक्षा प्रदर्शित करने लगी है। युग निर्माण आंदोलन ने कार्यक्षेत्र

ग्रामीण, अछूते किंतु असली भारत को बनाया है। प्रचारात्मक कार्य पूरा होने पर संगठन सुदृढ़ होने के बाद रचनात्मक, संघर्षात्मक कार्य प्रारंभ करने हैं।

शाखाओं एवं कार्यकर्त्ताओं को जो कुछ करना पड़ता है, बाहर से उत्साह उत्पन्न करने एवं मार्गदर्शन करने के लिए कोई प्राणवान व्यक्ति उन तक नहीं पहुँचते, फलत: उत्साह कभी रहता है कभी शिथिल पड़ता है और कभी-कभी तो बुरी तरह समाप्त हो जाता है। उसमें स्थिरता लाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रभावशाली मार्गदर्शक केन्द्र से भेजे जाते रहें, जो सक्रिय सदस्यों एवं कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को साथ लेकर कंधे से कंधा भिड़ाकर काम करें। कदम से कदम मिलाकर चलने का उपक्रम बनाकर शिथिलता के वातावरण को उमंग भरे उत्साह में परिवर्तित करें। यह कार्य वानप्रस्थों को निबाहना चाहिए। सक्रिय शाखाओं में जाकर कुछ मार्गदर्शन प्रदान करें। हर सृजन सैनिक से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करें और उसकी शिथिलता का निराकरण करके सक्रियता उत्पन्न करें। एक वानप्रस्थ के चले जाने के उपरांत उस स्थान की पूर्ति के लिए नए वानप्रस्थ पहुँचते रहें तो उस नवीनता में नवीन व्यक्तित्वों से शाखाओं को अभिनव प्रकाश मिलता रह सकता है।

नर-रत्नों की आवश्यकता

भारत के कोने-कोने से ऐसे प्रखर नेतृत्व की माँग है, जो मंच पर बैठकर मात्र अभिनय करने को, अपनी लोकैषणा तृप्त करके संतुष्ट नहीं रहे वरन् कार्यक्षेत्र में उतरकर व स्वयं बंदे को साथ लेकर चलें। उन्हें कंधे से कंधा भिड़ाकर कदम से कदम मिलाकर चलना सिखाएँ। निरहंकारी, लोकैषणा से विमुक्त वानप्रस्थी से यह आशा सहज ही की जा सकती है। जौहरियों की तरह नर-रत्नों के उत्पादक और उन्नायक वानप्रस्थ विश्वमानव की अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकता पूरी कर सकते हैं, यह सुनिश्चित और सुस्पष्ट है।

अति उपयोगी कार्य जनसंपर्क से ही संभव होंगे

युग निर्माण योजना का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। उसके विस्तार की अगणित संभावनाएँ अभी भविष्य के गर्भ में ही छिपी पड़ी है। रचनात्मक और संघर्षात्मक कार्यों के अगले कदम उठाए जाने ही चाहिए। इसकी प्रतीक्षा दसों दिशाएँ कर रही है। जनमानस को झकझोरने के लिए अभी अनेक आधारों को हाथ में लिया जाना, लगभग अछूता ही पड़ा है। उसके लिए इतने अधिक रचनात्मक कदम उठाने हैं जो अब तक की सफलता की अपेक्षा सहस्रों गुने अधिक बड़े विस्तार का साधन-सरंजाम जुटा सकें।

युग साहित्य प्रकाशन का तंत्र बड़ा और सुदृढ़ बनाना, सभी भाषाओं में प्रकाशन, देव संस्कृति विश्वविद्यालय का संचालन, भारत एवं विदेशों में संगठन सुदृढ़-व्यवस्थित बनाना आदि अनेक कार्य विशाल एवं महत्वपूर्ण हैं। ६०० करोड़ लोगों के विचार परिवर्तन (ब्रेनवास) के लिए करोड़ों वानप्रस्थ तैयार करना है।

उपर्युक्त स्तर के ऐसे अनेक कार्य हैं, जो जनजागरण की महती भूमिका प्रस्तुत कर सकते हैं। इनके लिए व्यक्तियों और साधनों की कमी नहीं रह सकती, पर कठिनाई यह है कि प्रेरणा और पुकार अपने स्थान पर खड़ी चीखती चिल्लाती रहती हैं और उपयोगी व्यक्तित्व तथा प्रचुर साधन इस के स्थान पर मरे मूर्छित पड़े रहते हैं। दोनों को एक दूसरे से मिलाने की कड़ी कहीं जुड़ ही नहीं पाती। यह कड़ी जोड़ने में वानप्रस्थों की प्रव्रज्या अपने ढंग की अनोखी भूमिका प्रस्तुत कर सकती है। वानप्रस्थी का जनसंपर्क इस प्रकार के अनेक आधार भी धर्म प्रचार के साथ-साथ ही प्रस्तुत करता रह सकता है।

विश्व कल्याण हेतु अग्रसर हों

दुष्प्रवृत्तियों से लड़ने को एक बड़ी सेना की आवश्यकता है, जो भले ही रीछ-वानरों जैसी हो, पर उसमें आदर्शवादिता की, त्याग-बलिदान की, भावभरी उमंगें हिलोर अवश्य ले रहीं हों।

इसके लिए उन प्रबुद्ध लोगों का द्वार खटखटाना पड़ेगा, जिनकी आवश्यक परमार्थ बुद्धि के साथ-साथ पारिवारिक स्थिति भी ऐसी हो कि बिना वेतन लेने की आवश्यकता अनुभव किए अपनी प्रतिभा का अनुदान विश्व मानव के चरणों में समर्पित करते हुए हिचक अनुभव न करें। इसी स्तर के लोगों को वानप्रस्थ कह सकते हैं। अपने धर्मपरायण देश में यदि सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्राण प्रक्रिया को वानप्रस्थ आदर्श को पुनर्जीवित किया जा सके तो विश्व की विषम परिस्थितियों में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न कर सकना कुछ कठिन न रह जाएगा। मानव जाति को वर्तमान दयनीय स्थिति से उबारते हुए विश्व का कायाकल्प कर सकना आज भले ही कठिन लगता हो, पर जब वानप्रस्थ प्रवाह को पुनर्जीवित किया जा सकना संभव हो जाएगा तो जटिल गुत्थियों का सरल हल सहज ही निकल आएगा। देश-विदेश में जनजागरण का शंख फूँकने वाले, धर्म और अध्यात्म की उपयोगिता अपने प्रखर व्यक्तित्व से प्रामाणिकता के रूप में सिद्ध करने वाले महामानवों को अभीष्ट मात्रा में यदि हम विश्व कल्याण के लिए उपस्थित कर सके तो यह बहुत बड़ी बात होगी। युग निर्माण परिवार की महानतम उपलब्धि ही इसे कहा जा सकेगा।

समाज ऋण चुकाने में पीछे न रहें

ढलती आयु जिसे वानप्रस्थ कहते हैं, समाज का ऋण चुकाने के लिए है। मानव जीवन का तनिक भी विकास सामाजिक सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकता। अन्य जीव अपने एकाकी बलबूते पर अपना निर्वाह कर लेते हैं, पर मनुष्य प्राणी के लिए यह शक्य नहीं। वह पग-पग पर दूसरों की सहायता पर निर्भर रहता है और जिसे जितना अच्छा सहयोग मिल जाता है, उतना ही वह सुखी एवं समुन्नत बन सकता है। इस तथ्य ने हर मनुष्य को समाज का ऋणी बना रखा है। उस ऋण को चुकाए बिना जो मर जाता है, शास्त्र के अनुसार उसे नरक में जाना पड़ता है। ज्ञान संपादन और सुखोपयोग

के अवसर ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रमों में मिलते हैं, उन ऋणों से उऋण होने की स्थिति वानप्रस्थ में ही प्राप्त होती है।

समाज सेवा का, लोकमानस की उत्कर्षता को बनाने और बढ़ाने का उत्तरदायित्व वानप्रस्थों का ही है। वे बिना आर्थिक प्रतिफल चाहे लोकहित के कार्यों में समय दे सकते हैं। लोकसेवा के योग्य अनुभव भी संग्रह हो जाता है और बाल सफेद हो जाने से दूसरों पर इस ढलती उम्र का भी प्रभाव पड़ने लगता है। मृत्यु की समीपता से धर्म में रुचि भी वास्तविक होती है। इसलिए जनकल्याण के लिए नि:स्वार्थ लोकसेवा का परम पवित्र उत्तरदायित्व वानप्रस्थों के कंधे पर ही आता है। जो लोग उसकी उपेक्षा करते हैं, वे समाज के साथ विश्वासघात करने वाले अथवा कर्तव्य की अवहेलना करने वाले कार्यहीन ही माने जा सकते हैं।

जिनने समाज का ऋण नहीं चुकाया है, वानप्रस्थ का कर्तव्य पूरा नहीं किया है, वे तब तक एकांत की बात सोचने लगें तो उन्हें भगोड़े सिपाहियों की तरह कायर एवं शास्त्र मर्यादा को तोड़ने वाला उच्छृंखल ही माना जाएगा।

मानव समाज को पतित होने से बचाएँ

जहाँ व्यक्तिगत पूजा पाठ में समाजसेवा का समावेश नहीं रहता, वहाँ समाजसेवा में, जनता जनार्दन की परिचर्या करने में, विश्वविराट की आराधना करने में भजन-पूजन का भाव सन्निहित रहता है। भजन शब्द भज् धातु से बना है। जिसका अर्थ सेवा ही होता है। जिस विधान में सेवा सम्मिलित नहीं, वह न तो पूजा है और न आराधना। वानप्रस्थ आश्रम का मूल प्रयोजन भी समाजसेवा ही है। विषय वासनाओं एवं पारिवारिक उत्तरदायित्व से मुक्त होकर ही कोई मनुष्य नि:स्वार्थ भाव से समाज सेवा के कार्यक्रमों में योगदान कर सकता है। यदि समाज की रखवाली करने वाले, उसे ठीक दिशा दिखलाने और दुष्प्रवृत्तियों से सावधान करने वाले अनुभवी व्यक्ति आगे न बढ़ते रहे तो निश्चय ही मानव समाज कुछ

ही समय में भयानक रूप से पतित हो जाएगा और ऐसी अवस्था में मनुष्य की क्या दशा हो जाएगी, कुछ नहीं कहा जा सकता। निस्पृह, नि:स्वार्थ, निष्काम, अनुभवी एवं परिष्कृत व्यक्ति ही समाज की रखवाली ठीक तरह से कर सकते हैं और ऐसे साधु पुरुष वानप्रस्थी ही हो सकते हैं।

वानप्रस्थियों द्वारा समाज सेवा के कार्य

(१) गाँव के अवकाश प्राप्त शिक्षक **बाल संस्कारशाला** प्रारंभ करें। गाँव के सभी अवकाश प्राप्त अध्यापकों की एक गोष्ठी में उन्हें इसकी प्रेरणा देनी चाहिए। प्रत्येक गाँव में ५-६ अवकाश प्राप्त शिक्षक अवश्य मिल जाते हैं। इनको ब्राह्मणोचित जीवनयापन हेतु पेंशन मिलती है। अब तक किए गए शिक्षण कार्य के बदले में वेतन लेते रहे। अब जीवन का उत्तरार्द्ध लोकसेवा हेतु भगवान के कार्य में नियोजित करना चाहिए। ये शिक्षक मिलाकर एक बाल संस्कारशाला प्रारंभ कर दें। सभी परिवारों में पढ़े लिखे लोग नहीं होते। जो पढ़े लिखे भी हैं, उन्हें शिक्षण का अनुभव न होने से अपने बच्चों के अध्ययन में कोई सहयोग नहीं कर पाते। अपने मुहल्ले, कालोनी, गाँव के छोटे बच्चों को घर-घर संपर्क करके सायंकाल दो घंटे के लिए बाल संस्कारशाला में बुला लिया जाए। सभी शिक्षक मिलकर इन के गृहकार्य पूर्ण कराने में सहयोग करें, विषय संबंधी कठिनाइयों का निवारण करें और उनमें शिष्टाचार, सहयोग, स्नेह, सद्भाव, परिश्रम आदि अनेक अच्छे संस्कार डालने का प्रयास आचरण एवं कथानकों के माध्यम से करते रहें। मुख्य कार्य तो अच्छे संस्कार डालना ही है। गृह-कार्य पूरा कराने के लोभ से आकर्षित होकर अभिभावक अपने बच्चों को अवश्य भेज देंगे। अवकाश प्राप्त शिक्षकों के लिए इससे अच्छा उपयोग अपने समय हो नहीं सकता। इस सेवा की प्रतिक्रिया स्वरूप समाज में भारी सम्मान एवं सहयोग मिलगा। शारीरिक असमर्थता की स्थिति में उपकृत समाज आपकी सेवा में कोई कमी नहीं रखेगा।

(२) **युवाशक्ति संगठन** बनाकर युवकों को गाँव में गुंडागर्दी करने वालों को दबाकर रखने एवं कमजोर व्यक्तियों की रक्षा करने का दायित्व उठाने की प्रेरणा देनी चाहिए। युवकों को एक संगठन बनाना चाहिए। इस संगठन के सदस्य पूरी तरह निष्ठावान, ईमानदार हों, जिनके हृदय में समाज सेवा की सच्ची भावना हो। संगठन की नियमित गोष्ठियाँ होती रहें। प्रत्येक गोष्ठी में युग निर्माण का संकल्प सभी को एक बार पूरी श्रद्धा से दोहराना चाहिए। इस संगठन का कार्य समाज के कमजोर वर्ग की सुरक्षा न्याय के आधार पर करना होना चाहिए। वानप्रस्थियों में जो अपने पूर्व जीवन में प्राणवान, संघर्षशील, न्यायप्रिय रहे हों, उन्हें अपने क्षेत्र में गाँव-गाँव में ऐसे संगठनों का निर्माण करना चाहिए।

(३) वानप्रस्थी **चिकित्सक** गाँव-गाँव जा कर स्वस्थ रहने की कला सिखाएँ। प्राकृतिक जीवन, स्वदेशी चिकित्सा की जानकारी दें। चिकित्सा शिविर लगाएँ। अब तक रोगियों से फीस लेकर चिकित्सा का कार्य करते रहे हैं। अब आपके सभी पारिवारिक दायित्व पूरे हो गए हैं। अब तक उपार्जित धन के ब्याज से आपकी ब्राह्मणोचित जीवनयापन की व्यवस्था बन सकती है। अत: अब जीवन के उत्तरार्द्ध में नि:शुल्क चिकित्सा परामर्श देकर, लोकसेवा ही ईश्वरसेवा समझकर पुण्य अर्जित किया जाना चाहिए।

(४) विद्यार्थी वर्ग को प्रतिभा-संवर्धन, अध्ययन करने का सही ढंग, स्मृति वृद्धि के उपाय बताकर लाभ पहुँचाएँ। जो वानप्रस्थ अपने जीवन में साधक रहे हों, योग-प्राणायाम में कुशल हों, वे विद्यालयों में एक सप्ताह नियमित कक्षाएँ लेकर छात्रों के लिए जीवनोपयोगी योग-प्राणायाम का प्रशिक्षण देकर अपना जीवन सफल बना सकते हैं। **प्रतिभा-संवर्द्धन** के वैज्ञानिक

उपायों का व्यावहारिक प्रशिक्षण देकर नई पीढ़ी को प्रतिभावान बनाना चाहिए।

(५) **स्वास्थ्य गोष्ठी** में स्वस्थ रहने की विधि और साधारण रोगों का निरापद उपचार बताएँ। स्वास्थ्य संरक्षण में रुचि रखने वाले वानप्रस्थ गाँव-गाँव स्वास्थ्य गोष्ठी में स्वच्छता का महत्त्व, स्वच्छ रहने की आदत डालने, सस्ता एवं पौष्टिक स्वास्थ्यकर भोजन की जानकारी जनसामान्य को दें। स्थान विशेष की परिस्थितियों में स्वस्थ रहने के लिए जिन-जिन बातों का ध्यान रखें, इसकी जानकारी दें। शिशु पालन एवं बाल निर्माण हेतु परामर्श दें। शिक्षा का महत्त्व समझाकर सभी बच्चों को पढ़ाने के लिए अभिभावकों को प्रेरित करें।

(६) दांपत्य जीवन, शिशु निर्माण, वृद्धों की समस्या, टूटते परिवारों की समस्या पर परिवार खंड की **प्रज्ञापुराण कथा** के माध्यम से जनचेतना जगाएँ। जिन बातों को सीधे तौर पर किसी से कहने पर वह नाराज हो सकता है, उन्हें कथा के माध्यम से कहें और दृष्टांतों सहित विवेचना करके सुसंस्कारित परिवार बनाने पर जोर दें।

(७) परिवार में उपासना, साधना, आराधना का महत्व, **आस्तिकता संवर्धन**, संस्कार परंपरा, सामूहिक प्रार्थना, परिवार गोष्ठी आदि स्वस्थ परंपराओं को प्रारंभ कराएँ। सभी धर्मों के व्यक्तियों को उपासना करने की प्रेरणा दी जाए और उसमें सबके लिए सद्बुद्धि और सबके लिए उज्ज्वल भविष्य की प्रार्थना अवश्य जोड़ी जाए। एक अच्छा, ईमानदार, विश्वसनीय इंसान बनने और स्वयं को संसार का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य समझकर तदनुसार आचरण करने की प्रेरणा दी जाए।

(८) कुरीति, व्यसन, दूरदर्शन के अवांछनीय प्रदर्शनों का विरोध, फैशनपरस्ती के प्रति जनजागरण करें। कथा, सत्संग, प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों की निरर्थकता एवं हानियों से जन-साधारण को परिचित कराना चाहिए। तम्बाकू, शराब, जुआ, सट्टा, टी.बी., सिनेमा, फैशन आदि दुर्व्यसनों को दूर करने के लिए प्रदर्शन, गोष्ठियाँ, नुक्कड़ नाटक, प्रदर्शिनी, साहित्य आदि माध्यमों से समाज में विशेष रूप से युवा वर्ग में जन-चेतना पैदा करनी चाहिए।

(९) **बलि वैश्व**-अग्निहोत्र की जानकारी घर-घर पहुँचाएँ। प्रात: स्नान के बाद स्वच्छतापूर्वक भोजन तैयार करें। बिना नमक की पहली रोटी से पाँच टुकड़े चने के बराबर के तोड़कर घी-बूरा लगा कर अग्नि में गायत्री मंत्र बोलकर ५ आहुतियाँ समर्पित करें। सभी महिलाओं को यह विधि समझाकर प्रतिदिन करने की प्रेरणा दें। इस यज्ञ को श्रद्धा सहित करने पर बहुत लाभ होता है।

(१०) गोसंवर्धन, गोपालन का महत्व जन-जन तक पहुँचाएँ। गाय के शरीर में समस्त देवताओं का वास है। पंचगव्य (दूध, दही, घी, गोमूत्र, गोबर का रस) के दिव्य गुणों की जानकारी एवं उपयोग सबको बताएँ। गोपालन करने एवं गोदुग्ध प्रयोग करने की प्रेरणा दें। विस्तृत जानकारी 'जयति जय गोमाता' पुस्तक से प्राप्त कर सकते हैं।

(११) अवकाश प्राप्त कर्मचारियों के सम्मेलन करके वानप्रस्थ बनने की प्रेरणा दें। अवकाश प्राप्त कर्मचारियों को किसी मंदिर, आश्रम आदि पावन स्थल पर आमंत्रित करें। इस पुस्तक को पढ़कर प्राप्त ज्ञान को प्रवचन के माध्यम से उन्हें सुनाएँ। शेष जीवन के सदुपयोग करने हेतु लोकसेवा की

आवश्यकता समझाकर मार्गदर्शन प्रदान करें। यह पुस्तक पढ़ने का अनुरोध करें।

(१२) महिलाओं को कुरीति एवं फैशनपरस्ती उन्मूलन तथा भोजन पकाने की विधि समझाएँ। कुरीतियों के संरक्षण में महिलाओं का योगदान अधिक है। फैशनपरस्ती में भी महिलाएँ पुरुषों से बहुत आगे हैं। अत: उन्हें इनके उन्मूलन हेतु प्रेरित करने की आवश्यकता है। इस कार्य में महिलाएँ ही प्रयास करें तो सफलता अधिक मिलेगी। चौकाक्रांति की आवश्यकता महिलाओं को समझाएँ। सस्ता, पौष्टिक भोजन कैसे मिले, सबके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए उपयुक्त भोजन कैसे तैयार करें। मसाले, चिकनाई, मिठाइयों की हानियों से अवगत कराएँ। भोजन पकाने की उपयुक्त विधियों से परिचित कराएँ।

(१३) दीवार लेखन एवं स्टीकर आंदोलन चलाएँ। वानप्रस्थ परिजनों के लिए एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि यदि आपका लेखन अच्छा है तो गेरू, हिरमिच, पेंट तथा ब्रुश सँभाल लें। दीवारों पर सद्वाक्य लिखकर उन्हें प्रेरणाप्रद बनाएँ। घरों, कार्यालयों, विद्यालयों, मंदिरों आदि स्थानों पर सद्वाक्यों के सुंदर स्टीकर्स को चिपकाने का कार्य बहुत उपयोगी हैं। स्टीकर्स लेकर यदि निकल जाएँ तो जिससे संपर्क करेंगे वही कुछ स्टीकर्स अवश्य खरीद लेगा। यह केवल बिक्री का ही काम नहीं है। सद्विचारों के प्रसार में आपका बहुत बड़ा योगदान होगा।

(१४) घर-घर ज्ञान मंदिर एवं सामूहिक ज्ञानमंदिर स्थापित कराएँ। युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा से साहित्य के सैट विविध विषयों की पुस्तकों के तैयार कराकर उन्हें घर-घर में ज्ञानमंदिर की स्थापना का क्रम प्रारंभ करना चाहिए। हर घर में देव

मंदिर के साथ-साथ ज्ञान मंदिर होना चाहिए। प्रतिदिन स्वाध्याय जीवन का अनिवार्य अंग बन जाना चाहिए। इस की प्रेरणा घर-घर में देकर स्वाध्याय परंपरा प्रारंभ करानी चाहिए। कालोनी, मुहल्लों अथवा गाँव में सामूहिक ज्ञान मंदिर (पुस्तकालय) की स्थापना भी सबके सहयोग से कराई जा सकती है। जहाँ प्रतिदिन आकर लोग स्वाध्याय कर सकें, घर ले जाकर पढ़कर वापिस करते रहें, मूल्य देकर खरीद भी सकें।

(१५) युग निर्माण मिशन की पत्रिकाओं के सदस्य बनाएँ। युग निर्माण मिशन की पत्रिकाएँ देश की लगभग सभी भाषाओं में प्रकाशित होती हैं। निरंतर ज्ञान की प्राप्ति हेतु इन पत्रिकाओं का स्वाध्याय करने की प्रेरणा देकर उन्हें इनके सदस्य बनाना चाहिए। पत्रिकाओं की जानकारी इसी पुस्तक में विस्तार से दी गई है।

(१६) सच्चा उपयुक्त वानप्रस्थी यदि कहीं क्षेत्र में मिले तो उसका गायत्री तपोभूमि से संपर्क कराएँ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा.